महाभारत

एक दर्शन

डॉ. दिनकर जोशी

महाभारत

एक दर्शन

डॉ. दिनकर जोशी

अनुवाद

त्रिवेणी प्रसाद शुक्ला

प्रभात प्रकाशन
ISO 9001:2015 प्रकाशक

अर्थशास्त्रं इदं प्रोक्तं धर्मशास्त्रं इदं महत्।
कामशास्त्रं इदं प्रोक्तं व्यासेनामितलु रिहन॥

दर्शन की दिशा

मूल रूप से 'समकालीन' गुजराती दैनिक के रविवारीय संस्करण में ऐसे कुछ प्रश्नों के विषय में धारावाहिक श्रेणी शुरू की थी। परंतु बाद में पाठकों ने इसमें सक्रिय रुचि लेकर नए-नए प्रश्न उठाए, इसलिए यह श्रेणी जितना सोचा था, उससे अधिक लंबी होती गई।

यहाँ जो उल्लेख किए गए हैं, उनमें 'भंडारकर ओरिएंटल इंस्टीट्यूट, पुणे' के अधिकृत पाठ और गीता प्रेस, गोरखपुर की महाभारत की आवृत्ति का आधार लिया है, यह स्पष्ट कर देता हूँ।

हिंदी भाषा के पाठकों ने मेरी मूल गुजराती रचनाओं का स्वागत किया है, ऐसी मेरी मान्यता बेवजूद नहीं है। आज तक मेरी 20 से अधिक रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं, यह हिंदी पाठकों की शुभकामना का ही प्रतीक है। इस रचना का अनुवाद-कर्म अपने कंधे पर उठानेवाले मित्र श्री त्रिवेणी प्रसाद शुक्ला और इसे प्रकाशित करने के लिए प्रभात प्रकाशन के प्रति धन्यवाद प्रदर्शित करता हूँ।

—डॉ. दिनकर जोशी

102-ए, पार्क एवेन्यू,
महात्मा गांधी रोड, दहाणूकर वाड़ी,
कांदिवली (पश्चिम), मुंबई-400067
दूरभाष : 09969516745
वेबसाइट : www.dinkarjoshi.com
इ मेल : dinkarjoshi@rediffmail.com

1

मानव व्यवहार का शाश्वत धर्म

महाभारत के विषय में भारतीय भाषाओं में ही नहीं, विदेशी भाषाओं में भी अब तक बहुत कुछ लिखा गया है और अभी भी अविरत लिखा जा रहा है। पाठकों में भी महाभारत के विषय में अलग-अलग दृष्टिकोण से उसे सतत पढ़ते रहने का आकर्षण अक्षुण्ण रहा है। महाभारत कोई बाइबल या कुरान जैसा धर्मग्रंथ नहीं है, तथापि सदियों से लेखकों और पाठकों, दोनों पक्षों में इसमें सतत नवीनता बनी रही है। इसका क्या कारण हो सकता है?

महाभारत धर्मग्रंथ नहीं, यह बात आंशिक सत्य है। सही कहें तो महाभारत तमाम धर्मों का योग है। यहाँ 'धर्म' शब्द एक विशेष अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। धर्म माने कोई संप्रदाय नहीं। अंग्रेजी में जिसे Religion कहते हैं, उस अर्थ में 'धर्म' शब्द का उपयोग महाभारत में नहीं हुआ है। महाभारत का धर्म मानव व्यवहार का शाश्वत धर्म है।

महाभारत की बराबरी करने के लिए जिनके नाम प्राय: लिये जाते हैं, वे ग्रीक भाषा के ग्रंथ 'ईलियड' और 'ओडिसी' निश्चित राजकुलों की बात करते हैं। इसी प्रकार महाभारत के साथ ही जिसका नाम लिया जाता है, उस ग्रंथ 'रामायण' में भी केंद्र स्थान पर एक व्यक्ति है। रामायण के रचयिता 'वाल्मीकि' ब्रह्मा से राम की कथा लिखने का आदेश प्राप्त करते हैं और एक ऐसे पुरुष की कथा का आलेखन करना चाहते हैं, जो पुरुष धर्म का ज्ञाता हो, सत्यनिष्ठ हो, सफल, ज्ञानी, पवित्र, जितेंद्रिय, धनुर्विद्या में प्रवीण तथा सर्वगुण-संपन्न हो। नारद ने वाल्मीकि को ऐसे पुरुष के रूप में राम का परिचय कराया और क्रौंचवध के बाद व्यथित हुए कवि को ब्रह्मा ने ही रामकथा लिखने का सुझाव दिया है। इस रामकथा में इसके सर्जक को कथानायक राम के जीवन के किन-किन पहलुओं को समेट लेना है, इसकी भी ब्योरेवार सूची नारद ने कवि को दी है। इस प्रकार रामायण की रचना का आरंभ वाल्मीकि की करुणा और व्यथा के साथ हुआ है। इसमें इस करुणाभाव के उपरांत भक्तिभाव भी प्रधान स्थान पर है। महाभारत के विषय में ऐसा नहीं कहा जा सकता।

वेदों में एक शब्द प्रयुक्त हुआ है—सावित्री मंत्र। वेदों का सावित्री मंत्र है गायत्री। सावित्री मंत्र माने एक ऐसा मंत्र, जो समग्र ग्रंथ के नाभि-स्थान पर हो, जिस मंत्र को केंद्र में रखकर सर्जक द्वारा रची गई सृष्टि का रहस्य पाया जा सके। आधुनिक संदर्भ में हम इसे 'मास्टर की' कह सकते हैं। कई सेफ डिपॉजिट लॉकर केवल एक ही 'मास्टर की' से खुलते हैं, पर कोई-कोई सेफ डिपॉजिट लॉकर ऐसे होते हैं कि जिनमें एक अतिरिक्त चाबी की व्यवस्था की गई होती है। महाभारत में जिसे हम 'मास्टर की' कह सकते हैं, ऐसे दो श्लोक उपलब्ध हैं। इन दोनों को हम महाभारत का सावित्री मंत्र कह सकते हैं अथवा एक ही सावित्री मंत्र के दो भाग कह सकते हैं। आदिपर्व के पहले अध्याय में महर्षि व्यास महाभारत की रचना के लिए अपने उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए ब्रह्मा से निवेदन करते हैं। (रामायण की रचना में भी सर्जक वाल्मीकि ब्रह्मा से ही अनुज्ञा प्राप्त करते हैं और महाभारत के सर्जक महामनीषी व्यास भी अपने सर्जन के विषय में सर्वप्रथम ब्रह्मा से ही अनुज्ञा माँगते हैं। इन दोनों महाग्रंथों के आरंभ में ही ब्रह्मा का यह योगदान ध्यान देने योग्य है।) व्यास कहते हैं कि मेरे इस महाकाव्य में वेदों,

उपनिषदों, इतिहास, पुराण, भूत, वर्तमान और भविष्यकाल, जरा (वृद्धत्व), मृत्यु, भय, रोग आदि के उपरांत ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इन चारों वर्णों का कर्तव्यविधान, तपस्या, ब्रह्मचर्य, पृथ्वी, चंद्रमा, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारे, सत्युग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग, इन सभी का समावेश किया गया है।

इसके उपरांत न्याय, शिक्षा, चिकित्सा, दान, तीर्थों, देशों, नदियों, पर्वतों और समुद्रों का इसमें वर्णन किया गया है। इस ग्रंथ में युद्ध, शांति, विज्ञान, लोक-व्यवहार, आयुर्वेद, स्थापत्य, उत्पत्ति और लय, इस संबंध में विचार किया गया है। महर्षि व्यास ने महाभारत की रचना के लिए अपने इन उद्देश्यों की सूची ब्रह्मा को दी है, उसमें कहीं भी किसी व्यक्ति-विशेष या घटना-विशेष की बात नहीं है। इसका अर्थ यह हुआ कि व्यास ने महाभारत में जो कथानक आख्यान, उपाख्यान कहे हैं, वे कथन उनके लिए साध्य नहीं बल्कि मात्र साधन ही हैं। कुरुवंशी कौरवों और पांडवों की बात महाभारत में केंद्रस्थान पर है, ऐसा अवश्य लगता है। श्रीकृष्ण या भीष्म महाभारत के कथानायक हों, ऐसा अवश्य लगता है। श्रीकृष्ण या भीष्प महाभारत के कथानायक हों, ऐसा मानने के लिए मन अवश्य ललचा जाता है, परंतु ग्रंथ के आरंभ में ही इसके रचयिता व्यास ने अपने उद्देश्य के विषय में जो स्पष्टता की है, उसे लक्ष्य में रखें तो तुरंत समझ में आ जाता है कि महाभारत किसी व्यक्ति की कथा नहीं है।

सावित्री मंत्र का यह पूर्व-भाग देखने के बाद उसके उत्तर भाग की भी जाँच कर लेते हैं। इस उत्तर-भाग को लक्ष्य में लिये बिना महाभारत का गंतव्य स्थान नहीं पाया जा सकता। सावित्री मंत्र का यह दूसरा भाग महाभारत के बिल्कुल अंत में स्वर्गारोहण पर्व के अंतिम अध्याय का 62वाँ और 63वाँ श्लोक है। इन श्लोकों में महर्षि व्यास अतिशय हताश होकर दोनों हाथ ऊँचा करके पुकार-पुकारकर कहते हैं कि मेरी बात कोई सुनता नहीं। महर्षि वेदना व्यक्त करते हैं कि धर्म सनातन है, और सुख-दु:ख तो क्षणिक हैं और ऐसा होते हुए भी लोग धर्म का परिसेवन क्यों करते नहीं?

महाभारत के लगभग एक लाख जितने श्लोकों में इस सावित्री मंत्र के पाँच श्लोकों के पास महाभारत को समझने की 'मास्टर की' है। यह 'मास्टर की' यदि एक बार समझ में आ जाए तो फिर आदि और अंत के बीच फैले महासागर समान इस ग्रंथ शिरोमणि के पास जाने का बार-बार मन हुए बिना रहेगा नहीं। सामान्य रूप से मानवसर्जित कोई भी कलाकृति अपने भोक्ता को सतत एक जैसा आनंद या संतोष नहीं दे सकती। विश्व साहित्य की कोई भी उत्तम कृति हो या फिर मानवरचित उत्तम कही जा सकें, ऐसे ताजमहल या फिर एफिल टॉवर हों, उत्तम शिल्प या चित्रकृतियाँ हों, ये सभी पहली बार हम संपर्क में आएँ, तभी आनंद देती हैं। यह आनंद उनके दूसरे या तीसरे संपर्क के समय घटता जाता है और इस तरह पुन:-पुन: इसका नाविन्य उनके उपभोक्ता के लिए घटता रहता है। एक क्षण ऐसा भी आ जाता है कि वह रचना या कलाकृति उस भोक्ता के मन में नितांत सहज (सामान्य) कृति बन जाती है। मानव सर्जन की यह मर्यादा है। प्राकृतिक रचनाओं को यह मर्यादा स्पर्श नहीं करती।

एक ही सूर्योदय या सूर्यास्त उसके भोक्ता को रोज-रोज नया-नया ही लगता है। समुद्र की लहरें, जो ज्वार-भाटे का निर्माण करती हैं, वे लहरें रोज-रोज एक ही होती हैं, फिर भी उनका दर्शन हर रोज नया ही लगता है। पूनम की चाँदनी का महत्त्व किसी दिन कम नहीं होता। मानव-रचित कृतियाँ हमें जो संतर्पक भाव देती हैं, वह सतह के ऊपर का आनंद है, इसलिए इस आनंद पर अर्थशास्त्र की घटती उपयोगिता का नियम लागू होता है। परंतु प्रकृति

सर्जित रचनाओं से जो अनुभूति मिलती है, वह सतह के ऊपर का मजा नहीं, बल्कि गहराई में बहता आनंद का प्रवाह होता है।

महाभारत प्रकृति सृजित नहीं, मानवरचित है। तथापि ऊपर कहा वह मानव सृजित सर्जन नहीं बल्कि प्रकृतिरचित सर्जन का नियम लागू करना पड़ता है। यह एक अद्‌भुत और विस्मयकारी घटना है। महाभारत का सौंदर्य प्रकृतिरचित सौंदर्य है; क्योंकि इसके रचयिता ने किसी विशेष व्यक्ति, घटना या भाव को लक्ष्य में न रखते हुए समग्र मानव-जीवन को उसकी अखिलता (समग्रता) के साथ इस ग्रंथ में समाविष्ट कर लिया है। जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति मूलभूत रूप से सदृश होते हुए भी विश्व के कोई भी दो व्यक्ति एक जैसे जनमे नहीं। इस विभिन्नता का रहस्य किसी भी सर्जक या भावक के लिए एक चुनौती बनी रही है।

महाभारत के विषय में जो लिखा जा चुका है और जो लिखा जा रहा है, उस सभी के मूल में यह चुनौती रही है। कोई भी सर्जक जब तक किसी चुनौती को स्वीकार नहीं करता, तब तक उसका सर्जन कर्म उथला ही रहता है। कोई भी भावक या भोक्ता इस चुनौती की दिशा में चेहरा नहीं घुमाता है तो उसका संवेदन कुंठित रहता है। इस प्रकार, सर्जक और भावक दोनों महाभारत के महासागर के पास बैठकर जो तृप्ति पाता है, वह तृप्ति अन्यत्र कहीं नहीं पाई जा सकती।

मनुष्य का चित्त अपने उद्‌गमकाल से लेकर आज तक जो भी कर सकता है, जिन विषयों का स्पर्श कर सकता है, वे सभी महाभारतकार ने आलेखित किए हैं, और इसीलिए महाभारत में कहीं-न-कहीं प्रत्येक भावक को, स्वयं एकरूप हो गया है, ऐसा लगे बिना नहीं रहता। मनुष्य जिस स्थल पर अपने आपको अभिव्यक्त हुआ देखता है, उस स्थल के विषय में उसकी भावना सहज ही बदल जाती है। किंतु भावना के बिंदु तक पहुँचने के लिए संवेदनशील भावक होना पहली शर्त है।

गीता महाभारत का एक अंश है और महाभारत की रचना वेदों तथा उपनिषदों के काल के लंबे समय बाद हुई है। हिंदू धर्म, जिसे वैदिक काल में वैदिक धर्म का नाम दिया गया है, यह परंपरा महाभारत काल के पहले की है और इसके बावजूद महाभरत के अंश-स्वरूप 'भगवद्‌गीता' इस हिंदू धर्म का धर्मग्रंथ बन चुकी है। यह आश्चर्य उपजाए, ऐसी एक अबूझ पहेली है। जिस धर्म का मूल महाभारतकाल के पूर्व सैकड़ों और हजारों वर्ष तक फैला है, उस धर्म ने अपने प्रामाणिक धर्मग्रंथ के रूप में गीता को प्राप्त करने के पहले लंबी प्रतीक्षा की है।

रहस्य महाभारत के पास अपरंपार हैं। सौंदर्य इस प्रत्येक रहस्य के साथ जुड़े हुए हैं। रहस्यों को भेदना और सौंदर्यों को प्राप्त करना मानव चित्त की अविरत प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया जब तक जारी है तब तक महाभारत मानवजाति के लिए एक अति मूल्यवान ग्रंथ बना रहेगा, इसमें कोई शंका नहीं।

□

2

नर, नरोत्तम, नारायण

महाभारत में सावित्री मंत्र जैसे जिन दो श्लोकों का हमने उल्लेख किया, उनमें से आरंभ के श्लोक में महाभारत में लेखक ने जिन विषयों की चर्चा की है, उनकी सूची दी है, परंतु इस सावित्री मंत्र का जो दूसरा श्लोक महाभारत के अंतिम अध्याय में दिया है, उसमें रचनाकार व्यास स्वयं हाथ ऊपर उठाकर आक्रोश करते हैं कि—मेरी बात कोई सुनता नहीं। इसका क्या ऐसा अर्थ लगाया जा सकता है कि महाभारतकार अपनी रचना के उद्‌देश्य में निष्फल सिद्‌ध हुए हैं? इसके साथ ही महाभारत की समग्र रचना का यदि एक ही उद्‌देश्य बताना हो तो वह कौन सा बताया जा सकता है?

महाभारत के आरंभ का जो सर्वप्रथम श्लोक है, उसे ध्यान में लिये बिना इस समग्र प्रक्रिया को नहीं समझा जा सकता है। महाभारत के विषय में कोई बात निश्चितता के साथ नहीं कही जा सकती। महाभारत में ऐसे अनगिनत प्रसंग और कथानक हैं कि जिन्हें 'दो धन दो बराबर चार' जैसी सरलता से मूल्यांकित नहीं किया जा सकता। परा और अपरा विद्या की बात करते हुए उपनिषद्‌कार ने स्वयं वेदों को भी अपरा विद्या कहा है। वेद यदि ईश्वर कथित हैं तो ईश्वर के प्रमाणभूत वाक्य अपरा विद्या कैसे हो सकते हैं, ऐसा संशय मन में पैदा होता है। परंतु यह संशय तभी तक टिका रहता है, जब तक ब्रह्मविद्या शब्द समझ में न आया हो। ब्रह्मविद्या ही पराविद्या है और बाकी की तमाम विद्याएँ यदि इस ब्रह्म विद्या की दिशा में न ले जाती हों तो अपराविद्या है। इसी प्रकार महाभारत में भी अब तक संदर्भ और प्रबल रहस्य स्फुट नहीं होते, जब तक प्रसंगत: संशय पैदा होते ही हैं।

महाभारत का पहला श्लोक बहुत प्रसिद्‌ध है। इस श्लोक का पहला चरण इस प्रकार है—'नारायणं नमस्कृत्यं नरं चैव नरोत्तमम्', समग्र महाभारत की आधारशिला ये तीन शब्द हैं : नर, नरोत्तम और नारायण। प्रत्येक मानव की अभीप्सा और मनुष्य के पास से परमात्मा की अपेक्षा भी यही है कि नर से नारायण की ओर गति करे। इसे आप शिव में से प्रकट हुआ जीव पुन: शिव में मिल जाए, ऐसे एक वर्तुल की बात भी कर सकते हैं। जीव का आरंभ शिव से हुआ है और जीव का अंतिम गंतव्य स्थान भी शिव ही हो सकते हैं। 'नर' शब्द यहाँ पुरुषवाचक नहीं है। नर माने प्रत्येक मानव। फिर वह पुरुष हो या स्त्री! नर इस प्रक्रिया में सर्वप्रथम नरोत्तम बनने की दिशा में गति करे और अंतिम चरण में वह नारायण को प्राप्त करे, तभी यह वर्तुल पूरा होता है। इसी श्लोक का दूसरा चरण देवी सरस्वती का स्मरण करता है। नर की नरोत्तम और नारायण की दिशा में गति ज्ञान के बिना संभव नहीं। याद रहे कि भगवद्‌गीता में श्रीकृष्ण ने कर्मयोग और भक्तियोग, इन दोनों से ज्ञानयोग को ऊपर बताया है। यह ज्ञान देवी सरस्वती की कृपा के बिना संभव नहीं। याद रहे कि भगवतगीता में श्रीकृष्ण ने कर्मयोग और भक्तियोग, इन दोनों की अपेक्षा ज्ञानयोग श्रेष्ठ बताया है। यह ज्ञान देवी सरस्वती की कृपा के बिना प्राप्त नहीं होता और इसीलिए देवी सरस्वती की वंदना करके इस श्लोक का अंतिम चरण वे इस प्रकार पूर्ण करते हैं, 'ततो जयमुदीरेयत' (तभी जय-जयकार होती है)।